

हम भारत के लोग...और न्याय की चरमराती तिपाई

सोनाली

आज़ाद भारत की नींव का सबसे अहम पत्थर है भारतीय संविधान। इस एक दस्तावेज़ ने कोशिश की है कि सालों, बल्कि सदियों से चले आ रहे तमाम तरह के अन्यायों को मिटाने की एक राह मिले। संविधान की प्रस्तावना, जिसे उसकी आत्मा कहा जाता है, में दिए गए तमाम आदर्शों में से एक है न्याय। यह भारत को एक ऐसा देश बनाने का सपना देखता है जहाँ लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। लेकिन क्या यह सपना पूरा हुआ? या इसे गंभीरता से लिया जा रहा है? इस साल 26 जनवरी को जब हम संविधान लागू होने के छिहत्तर साल पूरे होने का जश्न मनाने वाले हैं, तो एक बार न्याय के इस आदर्श की देश में मौजूदा स्थिति का जायज़ा भी लिया जाना चाहिए।

भारतीय संविधान जिस न्याय की संकल्पना पेश करता है वह केवल अदालतों और क़ानूनों पर टिका नहीं है बल्कि न्याय की एक व्यापक समझ पर आधारित है। सामाजिक न्याय – यानी भारतीय समाज में पुराने समय से चले आ रहे जातीय, लैंगिक, वर्गीय भेदभाव को ख़त्म किया जाए, आर्थिक न्याय – मेहनत की लूट जो सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था की नींव है, ऐसी व्यवस्थाओं को ख़त्म कर आर्थिक असमानताओं की खाई को पाटना, और राजनीतिक न्याय – राष्ट्र निर्माण में, नीति निर्माण में बिना भेदभाव देश के प्रत्येक नागरिक की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना, असहमति प्रकट करने की आज़ादी भी इस राजनीतिक न्याय की प्रक्रिया का एक अहम पहलू है। संविधान में दिए गए कई प्रावधानों के पीछे न्याय का यही विचार है, जैसे जातिगत आरक्षण, सार्वभौमिक मताधिकार, मौलिक अधिकार व स्वतंत्रताएँ, राज्य और धर्म का अलगाव, राज्य के नीति निदेशक तत्व जिसमें भौतिक संसाधनों का वितरण और नियंत्रण सामूहिक हित के आधार पर किए जाने की बात की गई है आदि। तो क्या आज भारत में न्याय का यह विचार, यह आदर्श अपनी पूरी जीवंतता के साथ लागू है?

भारत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ़ अपराध में लगातार वृद्धि हो रही है। यह राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों से साफ़ है। इसके साथ ही अल्पसंख्यकों, खासतौर से मुसलमानों, पर हमलों के मामले भाजपा सरकार के केंद्र में आने के बाद से आम बात हो गये हैं। देश में हिंदुत्व के आधार पर जो एक धार्मिक धुवीकरण बढ़ता जा रहा है वह सामाजिक न्याय के लिए सबसे बड़ा ख़तरा है। राज्य और धर्म के बीच की रेखा लगातार धूमिल की जा रही है। इसके साथ ही भाजपा सरकार जिस तरह हर क्षेत्र में निजीकरण को बढ़ावा दे रही है उससे शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य जैसे बुनियादी अधिकारों से सबसे ज्यादा हाशिए के समुदाय ही वंचित होंगे। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को निजी हाथों में दिया जा रहा है, दूरसंचार, बिजली वितरण, यहाँ तक कि रक्षा क्षेत्र में भी निजीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है। इससे सरकारी नौकरियों में कमी आएगी और नौकरियों में आरक्षण की स्थिति कमज़ोर होगी। देश भर से सरकारी स्कूलों के बंद किए जाने की ख़बरें आ रही हैं, इन स्कूलों के बंद होने से सबसे ज्यादा दलित, आदिवासी और उनमें भी लड़कियाँ पढ़ने के अधिकार को खो रही हैं।

आर्थिक न्याय पर दो बड़े प्रहार 2025 के अंत में केंद्र की मोदी सरकार ने किए – एक, कई श्रम क़ानूनों की जगह चार लेबर कोड्स लागू किए गए, दूसरा, दुनिया में अपनी तरह का अनूठा ग्रामीण रोज़गार गारंटी क़ानून यानी महात्मा गाँधी ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) में बुनियादी बदलाव कर इसे लगभग निरस्त कर दिया गया। चार लेबर कोड्स दशकों के कड़े संघर्ष से हासिल किए मज़दूरों के अधिकारों को लगभग ख़त्म कर, कॉर्पोरेट और उद्योगपतियों के हितों की रक्षा करते हैं। इनके तहत अब मालिकों को 'हायर और फ़ायर' का अधिकार यानी बिना नोटिस या कारण बताए

कर्मचारियों को नौकरी से निकाल देने का हक़ मिल गया है। साथ ही उन्हें यह भी अधिकार मिल गया है कि 100 मज़दूरों या कर्मचारियों तक की कंपनियाँ या कारख़ाने अब बिना सरकारी अनुमति के बंद किए जा सकते हैं, पहले यह सीमा 300 तक की थी। इन कोइस के तहत यूनियन बनाने, हड़ताल पर जाने, आदि जैसे मज़दूरों के अपने अधिकारों की लड़ाई के अहम और कारगर हथियार उनसे छीन लिए गए हैं। मज़दूर संगठनों के मुताबिक़ केंद्र सरकार ने देश के श्रमिक वर्ग को पूँजीपतियों की गुलामी करने के लिए मजबूर कर दिया है।

दूसरी ओर, मनरेगा, जिसका नाम बदलकर विकसित भारत – गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण) [वी बी – जी राम जी] कर दिया गया है, की आत्मा को ही भाजपा-नीत एनडीए सरकार ने ख़त्म कर दिया है। इस परियोजना में बुनियादी परिवर्तन कर इसे पंगु बना दिया गया है। यह योजना अब तक स्थानीय माँग के आधार पर चलती थी, यानी स्थानीय स्तर पर जिस तरह के विकास कार्य की ज़रूरत थी वे इसके तहत किए जाते थे, और ग्रामीण जनता को साल के सौ दिन के रोजगार की गारंटी दी जाती थी। अब इसके अंतर्गत क्या काम होंगे वह केंद्र निर्धारित करेगा जिसका केवल क्रियान्वयन स्थानीय शासन यानी पंचायत पर छोड़ दिया गया है। मनरेगा के तहत पंचायत को जो अधिकार मिले हुए थे वे भारतीय लोकतंत्र का विस्तार स्थानीय स्तर तक करने का काम भी करते थे। नए बदलावों के तहत योजना के खर्च का 40% भार अब राज्यों पर थोप दिया गया है। इससे जाहिर है कि राजस्व के लिए लगभग पूरी तरह केंद्र पर निर्भर हो चुके राज्य अब ग्रामीण श्रमिक वर्ग के लिए जीवनदायिनी इस योजना पर उतना ही ध्यान देंगे जितना उनकी तंग होती जा रही जेब इजाज़त देगी। साथ ही, कटाई के समय साल में 60 दिन अब इस परियोजना के तहत श्रमिक काम नहीं माँग सकते, यानी उन्हें बड़े भू-स्वामियों या किसानों के यहाँ उनकी शर्तों पर काम करने को मजबूर होना पड़ेगा। यह कदम साफ़ तौर से सामंती दासता और शोषण को बढ़ावा देने का काम करेगा।

साल 2025 में देश ने सार्वभौमिक मताधिकार पर जितना बड़ा हमला देखा, वह आज़ादी के बाद अब तक नहीं देखा गया है। बिहार चुनावों से ऐन पहले मतदाता सूची का विशेष गहन पुनरीक्षण (स्पेशल इंटेन्सिव रिविज़न- एसआईआर) की प्रक्रिया चुनाव आयोग ने शुरू की। आनन-फ़ानन में की गई इस प्रक्रिया ने लाखों लोगों के नाम मतदाता सूची से निकाल दिए। यानी लाखों लोग अपने मतदान के संवैधानिक अधिकार से वंचित कर दिए गए। राजनीतिक दलों और सामाजिक संगठनों ने सर्वोच्च न्यायालय में इसके खिलाफ़ अपील की, जो इस मामले में सुनवाई कर रहा है। सुनवाई के दौरान ऐसे मामले सामने आए, जहाँ ज़िंदा लोगों को मृत घोषित करके उन्हें मतदाता सूची से निकाल दिया, ऐसे और भी कई उदाहरण सामने आए। इतने विवादों के बावजूद केंद्र सरकार के हाथों की कठपुतली के रूप में काम कर रहे चुनाव आयोग के हाँसले पस्त नहीं हुए। एसआईआर की प्रक्रिया फ़िलहाल कई ऐसे राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में चल रही है जहाँ इस साल या अगले साल चुनाव होने हैं। चुनावों में मतदान करना एक नागरिक का सबसे मौलिक अधिकार और कर्तव्य है। लेकिन आज हम लोकतंत्र के इस सबसे केंद्रीय पहलू पर हो रहे इतने बड़े हमले को देख रहे हैं। ऐसे में राजनीतिक न्याय जिसका आधार ही सभी नागरिकों को देश के दिशानिर्धारण की प्रक्रिया में शामिल करने पर टिका है, कैसे स्थापित किया जा सकता है?

लोकतंत्र, गणराज्य, न्याय केवल शब्द नहीं, ये अपने आप में जीवित व्यवस्थाएँ हैं, लेकिन ये खुद ज़िंदा नहीं रह सकते। इन्हें लगातार ज़िंदा रखने के प्रयत्न होने ज़रूरी हैं। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने से यह देश एक गणराज्य नहीं बन गया था, बल्कि उस दिन से इसे गणराज्य बनाने का संकल्प औपचारिक रूप से लिया गया था। संविधान को अगर एक सुनहरा दस्तावेज़ समझकर, सालाना इसे पूज्य भाव से देखकर दोबारा काँच के बक्से में बंद कर दिया जाए तो यह केवल एक किताब है जिसकी सूखी स्याही हमारे मरे हुए लोकतंत्र की दास्तान भर बन जाएगी। भारत सही मायने में एक लोकतंत्र और गणराज्य तब कहलाएगा जब हम हर दौर में संविधान के आदर्शों को बचाए रखेंगे, उन्हें विस्तार देंगे। और यही इस देश की जनता कर भी रही है। मज़दूरों से लेकर किसानों तक, दलितों से महिलाओं तक, अल्पसंख्यक आदि सभी अपने अधिकारों पर हो रहे हमलों के खिलाफ़ लड़ रहे हैं और यह लड़ाई लड़ने का अधिकार उन्हें भारतीय संविधान ही देता है।

(कवर चित्र: विक्रांत भीसे)